

बौद्धप्रत्यक्ष लक्षण

बौद्ध न्यायशास्त्रमें प्रत्यक्ष लक्षण की दो परम्पराएँ देखी जाती हैं—पहली अभ्रान्तपद रहित, दूसरी अभ्रान्तपद सहित। पहली परम्पराका पुरस्कर्ता दिङ्नाग और दूसरीका धर्मकीर्त्ति है। प्रमाणसमुच्चय (१.३) और न्यायप्रवेश (पृ० ७) में पहली परम्पराके अनुसार लक्षण और व्याख्यान है। न्यायविन्दु (१.४) और उसकी धर्मोत्तरीय आदि वृत्तिमें दूसरी परम्पराके अनुसार लक्षण एवं व्याख्यान है। शान्तरक्षितने तत्त्वसंग्रहमें (का० १२१४) धर्मकीर्त्तिकी दूसरी परम्पराका ही समर्थन किया है। जान पड़ता है शान्तरक्षितके समय तक बौद्ध तार्किकोंमें दो पक्ष स्पष्टरूपसे हो गए थे जिनमेंसे एक पक्ष अभ्रान्तपदके सिवाय ही प्रत्यक्षका पूर्ण लक्षण मानकर पीत शङ्खादि भ्रान्त शानोंमें भी (तत्त्वसं० का० १३२४ से) दिङ्नाग कथित प्रमाण लक्षण—घटानेका प्रयत्न करता था।

उस पक्षको जवाब देते हुए दिङ्नागके मतका तात्पर्य शान्तरक्षितने इस प्रकारसे बतलाया है कि जिससे दिङ्नागके अभ्रान्तपद रहित लक्षणवाक्यका समर्थन भी हो और अभ्रान्तपद सहित धर्मकीर्त्तीय परम्पराका वास्तविकत्व भी बना रहे। शान्तरक्षित और उनके शिष्य कमलशील दोनोंकी दृष्टिमें दिङ्नाग तथा धर्मकीर्त्तिका समान स्थान था। इसीसे उन्होंने दोनों विरोधी बौद्ध तार्किक पक्षोंका समन्वय करनेका प्रयत्न किया।

बौद्धेतर तर्क ग्रन्थोंमें उक्त दोनों बौद्ध परम्पराओंका खण्डन देखा जाता है। भामहके काव्यालङ्कार (५. ६ पृ० ३२) और उद्योतकरके न्यायवार्तिकमें (१. १. ४. पृ० ४१) दिङ्नागीय प्रत्यक्ष लक्षणका ही उल्लेख पाया जाता है जब कि उद्योतकरके बादके वाचस्पति, (तात्पर्य० पृ० १५४) जयन्त (मञ्जरी पृ० ५२), श्रीधर (कन्दली पृ० १६०) और शालिकनाथ (प्रकरण प० पृ० ४७) आदि सभी प्रसिद्ध वैदिक विद्वानोंकी कृतियोंमें धर्मकीर्त्तीय प्रत्यक्ष लक्षणका पूर्वपक्ष रूपसे उल्लेख है।

जैन आचार्योंने जो बौद्धसम्मत प्रत्यक्ष लक्षणका खण्डन किया है उसमें दिङ्नागीय और धर्मकीर्त्तीय दोनों लक्षणोंका निर्देश एवं प्रतिवाद पाया जाता है। सिद्धसेन दिवाकरकी कृति रूपसे माने जानेवाले न्यायावतारमें जैन परम्परा-

नुसारी प्रमाण लक्षणमें जो बाधवर्जितपद—(न्याया० १) है वह अक्षपादके (न्यायसू० १. १. ४) प्रत्यक्ष लक्षणगत अव्यभिचारिपदका प्रतिनिम्ब है या कुमारिल कर्तृक समझे जानेवाले 'तत्रापूर्वार्थविज्ञानं प्रमाणं बाधवर्जितम्' लक्षणगत बाधवर्जित पदकी अनुकृति है या धर्मकीर्त्तीय (न्यायवि० १.४) अभ्रान्तपदका रूपान्तर है या स्वयं दिवाकरका मौलिक उद्भावन है यह एक विचारणीय प्रश्न है। जो कुछ हो पर यह तो निश्चित ही है कि आ० हेमचन्द्रका बौद्ध प्रत्यक्षलक्षण विषयक खण्डन धर्मकीर्त्तीय परम्पराको उद्देश्यमें रखकर ही है, दिङ्नागीय परम्पराको उद्देश्यमें रखकर नहीं—प्र० मी० पृ० २३।

बौद्ध लक्षणगत कल्पनाऽपोढ पदमें स्थित कल्पना शब्दके अर्थके संबंधमें खुद बौद्ध तार्किकोंमें अनेक भिन्न-भिन्न मत थे जिनका कुछ खयाल शान्तरक्षित (तत्त्वसं० का० १२१४ से) की इससे संबन्ध रखनेवाली विस्तृत चर्चासे आ सकता है, एवं अनेक वैदिक और जैन तार्किक जिन्होंने बौद्ध-पक्षका खण्डन किया है उनके विस्तृत ऊहापोहात्मक खण्डन ग्रन्थसे भी कल्पना शब्दके माने जानेवाले अनेक अर्थोंका पता चलता है^१। खासकर जब हम केवल खण्डन प्रधान तत्त्वोपप्लव ग्रन्थ (पृ० ४१) देखते हैं तब तो कल्पना शब्दके प्रचलित और सम्भवित करीब-करीब सभी अर्थों या तद्विषयक मतोंका एक बड़ा भारी संग्रह हमारे सामने उपस्थित होता है।

ऐसा होने पर भी आ० हेमचन्द्रने तो सिर्फ धर्मकीर्त्ति अभिमत (न्यायवि० १. ५) कल्पना स्वरूपका—जिसका स्वीकार और समर्थन शान्तरक्षितने भी (तत्त्वसं० का० १२१४) किया है—ही उल्लेख अपने खण्डन ग्रन्थमें किया है अन्य कल्पनास्वरूपका नहीं।

ई० १६३६]

[प्रमाण मीमांसा

१. न्यायवा० पृ० ४१। तात्पर्य० पृ० १५३। कंदली पृ० १६१। न्यायम० पृ० ६२-६५। तत्त्वार्थश्लो० पृ० १८५। प्रमेयक० पृ० १८. B.।